**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22**
**Received: 21-10-2020; Accepted: 06-11-2020; Published: 27-11-2020**
**www.hindijournal.com**
**Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 61-63**

# गोस्वामी तुलसी के काव्यों में समाजिक परिदृश्य

**संगीता कुमारी झा**
शोधार्थी, विश्वविद्यालय, हिन्दी–विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

**सारांश**
तुलसीदास अपने युग के दुर्धर्ष योद्धा थे जो अकेले अनेक मोर्चों पर लड़ रहे थे क्योंकि समग्र भारतीय जीवन और संस्कृति को अपनी कल्पना द्वारा वे साकार देखना चाहते थे। किसी भी महान कृतिकार के सृजनात्मक साहित्य में अंकित और प्रतिबिम्बित तत्कालीन समाज के स्वरूप का साक्षात्कार दोहरे तरीके से ही करना उचित प्रतीत होता है। एक तो यह कि हम उस कृतिकार के युग और परिवेश से प्ररिचय प्राप्त करें और दुसरा यह कि उसके कृतित्व में प्राप्त तत्कालीन साजिस यथार्थ को ऐतिहासिक संज्ञान के आलोक में परखें।
तुलसी की सामाजिक संरचना में सामंती राजतंत्र की विचार–दृष्टि का प्रतिफलन सर्वत्र दिखाइग देता है गरीब ने बाज, दीन दयालु, कृपानिधान, दलितों–वंचितों के शरणदाता के रूप में सर्वशक्तिमान प्रभु राम की कल्पना से यह स्पष्ट होता है कि गोस्वामी जी व्यवस्था तो राजतंत्र की ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे। पर उस व्यवस्था में राजा के पद वे अपने आदर्शों के अनुकूल उदार राज को अधिष्ठित करना चाहते थे। तुलसी अपने काव्य में जाति प्रथा अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था पर लगातार हो रहे प्रहार शुद्रों, अत्मजों और दलितों जातियों के भीषण उत्पीड़न के विरूद्ध और धर्म–परिवर्तनों नाथों, सिद्धों और संतो द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था के विरूद्ध जन–जागृति से भरी बानियों और पदों का व्यापक प्रभाव और अंततः जात–पाँत, छुआछूत, ऊँच–नीच के भेदभाव से भरी आश्रम व्यवस्था के अनर पैदा हो रही टूट–फूट आदि का वर्णन मिलता है। तुलसी की विचार व्यवस्था और उनकी राजनीतिक चेतना उल्लिखित प्रवृत्ति के अविवार्य अंग के रूप में विकसित दिखाई पड़ती है। जनसाधारण पर ढ़ाये जा रहे जूल्म, उनकी दुरवस्या, द्ररिद्रता तथा भूखे–नंगे लोगों की चीख–चीत्कार का वर्णन उन्होंने पूरी मार्मिकता और करूणा के साथ कि है। यहाँ तक कि महामारी, अकाल, गरीबी आदि की तत्कालीन वास्तविकता पूरी प्रखरता के साथ अंकित हुई है। धार्मिक पाखण्ड, आडम्बर, झूठ, मक्कारी, अनैतिकता आदि का पर्दाफास करने में भी गोस्वामी जी ने भरपूर कोशिश की है। पर अपने युग के सामाजिक–राजनीतिक संकट का हल प्रस्तुत करने में वे वैदिक–पौराणिक संस्कृति के ढ़ाँचे पर ही काम लिया है। उनके पास एक ही हल है–भक्ति, राम की भक्ति। तुलसी वर्तमान यथार्थ के संकट के समाधान प्रस्तुत करने में रामकथा के सभी चरित्रों और उपरिव्यानों का आदर्शीकरण करते हुए दिखे है। गोस्वामी की सम्पूर्ण कृतित्व के अन्दर इस असंगति से उत्पन्न द्वन्द और तनाव की गूँज–अनुगूँज सुनी जा सकती है।

**मूल शब्दः** काव्यों, परिदृश्य, साक्षात्कार, प्ररिचय

## प्रस्तावना
तुलसीकालीन युग राजनैतिक और सामाजिक उठान परथी। साहित्यिक सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह रचनात्मक युग था– तुलसीकालीन युग राजनीति और सामाजिक स्थिरता का युग था। मुगल सल्तनत अपनी मजबुती और उठान पर थी। साहित्यिक, सांस्कृतिक दृष्टि से रचनात्मक युग था। अबुल फजल, रहीम, रामदास, दादूदयाल अपने–अपने क्षेत्रों में साहित्यक की रचना कर रहे थे। परन्तु समाज परंपरागत रूढ़ियों से जकरा हुआ था। इसी युग में तुलसी का जन्म हुआ। तुलसी का समय दो संस्कृतियों की तकराहत के बाद उनके नजदीक आने का समय था। इसलिए तुलसी ने अपनी रचनाओं में हिन्दु और मुस्लिम संस्कृतियों का सीधे–सीधे उल्लेख न करके देव और मानव संस्कृति, मानव और असुर संस्कृतियों की टकराहट और फिर उससे नई मानवतावादी संस्कृति का बीज प्रस्फूटित होता दिखाई देता है। मध्यकालीन भारतवर्ष में सामान्तवाद के पतन के साथ–साथ हिन्दु धर्म में भी जकड़ बंदी गतिरोध और दुर्निवार बुराईयों के लक्षण प्रकट हो रहे थे। पुरानी व्यवस्था के पंडितों ने वेद–वेदांत, पुराण, स्मृति और धर्मशास्त्र के नये–नये भाष्य प्रस्तुत कर मरणोन्मुख व्यवस्था को पुनर्जीवित करने और बचाने का प्रयास किया। जन्म, मुडन, उपनयन, विवाह,श्राध आदि जैसे संस्कारों के अवसर पर वैदिक मंत्रो के पाठ के साथ कर्मकांडीय विधानों की पुनः जोर–शोर से प्रतिष्ठा की गई। जाति प्रथा वर्णाश्रम व्यवस्था, यज्ञ विधान आदि को नए सिरे से अनुमोदित करने के पीछे तुर्क, अफगान, मुगल, पठान आदि विदेशी आक्रमण कारियों और उनके धार्मिक–सामाजिक विचारों से रक्षा के प्रयासों ने वैदिक–पौराणिक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा की प्रवृति के नये सिरे से मजबूत कर दिया। एसे में तुलसीदास आहत हैं जातिप्रथा अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था पर लगातार हो रहे प्रहार, शुद्रों, अत्यजों और दलित जातियों के भीषण उत्पीड़न के विरूद्ध और धर्म–परिवर्तन, नाथों, सिद्धों और संतों द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था के विरूद्ध जन–जागृति से भड़ी बानियों और पदों का व्यापक प्रभाव और अंततः जात–पाँत, छुआछूत, ऊँच–नीच के भेदभाव से भरी आश्रम व्यवस्था के अन्दर पैदा हो रही टूट–फूट से इसके लिए वे कलियुग को दोषी तो मानते ही थे, लेकिन ज्यादा दोषी वे सिद्धों, नाथों और संतों को समझाते थे। अपने वचन और वेशभूषा मात्र से वैरागी वने लोगों ने जगत को ठग लिया है।

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग। (कवितावली)

कवितावली के इस पद के प्रारंभ में ही वर्ण, धर्म, आश्रम आदि के विनाश से तुलसी बहुत संतप्त है। वर्णोश्रम के विनास पर संताप और वर्णाश्रमव्यवस्था के सोपान–क्रम में निचले दर्जे पर अवस्थित जातियों के बीच से आये कबीर, रैदास, दादू आदि संतो के प्रति कटूक्ति और शापवाणी–ये दोनों बातें तुलसी की काव्य–कृतियों में अनेक स्थलों पर एकत्र ही मिलती हैं–

**बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।**
**जानै ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि।।**
**परत्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।**
**तेइ अभेदवादी शानी पर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर।।**

**आपु गए अरु तिन्हहूं धालहिं। जे कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं।।**
**कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।**
**जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।**
**नारि मुई गृहसंपति नासी। मूड मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।**
**जे विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। अभय लोक निजहाथ न सावहि।।**
**बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।।**
**सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन करहिं पुराना।।**
**सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।**

रामचरितमानस, उत्तरकांड, पद सं.–99–100)

भक्ति काल में किसी रचनाकार के कृतित्व में तत्कालीन यथार्थ का इतना विशुद्ध और दारूण चित्र नहीं मिलता जितना तुलसी के साहित्य में प्राप्त होता है। कवितावली में तुलसी कहते हैं काल बड़ा कराल है, राजा निर्दय है और राज समाज छली–कपटी है। जीवन को विभिषिका सम्पूर्ण यथार्थ का एक दुःस्वपन के रूप में तब्दील कर चुकी है। दिनोंदिन दरिद्रता दुष्काल, दुःख, पाप और कुराज्य दूने होते जा रहे है इस भयंकर वास्तविकता से भय खाकर सुख और सुकृत संकुचित हो रहे हैं। इस जमाने की करालता ऐसी है कि बड़े–बड़े पापी डराने–धमकाने की ताकत के बल पर दाँव लगाते हैं और जो भी माँगते हैं, आसानी से पा जाते हैं। पर भले आदमी का बुरा हो जाता है।

**''कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु बड़ोई छली है।''**

(कवितावली उत्तरकाण्ड पद सं.–85)

अपने युग के यथार्थ और पीड़ामय संसार के साक्षात् गवाह होने के नाते भक्त कवि तुलसीदास का कहना है इस संसार का संकट मिटेगा तो कैसे मिटेगा? त पतो कठिन है, और तीर्थाटन करके अबेल स्थानों में विचरने से भी कुछ नहीं होगा क्योंकि कलियुग में न कहीं वैराग्य है, न कहीं ज्ञान है–सब कुछ असत्य, सारहीन और फोकट का झूट है। नट के समान अपने पेट रूपी कुत्सित पिटारे से करोड़ों तरह के इन्द्रजाल और कौतुक का टाट चाड़ा करना व्यर्थ है। सुख पाने का एक ही साधन है राम नाम–रसना निसिबासर रामु रहो।

**न मिटै भवसंकटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।**
**कलिमें न बिरागु, न गयानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूठ–जटो।।**
**नटु ज्यों जनि पेट–कुपेटक कोटिक चेटक–कौतुक–ठाट डटो।**
**तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिवासर रामु रटो।।**

(कवितावली, उत्तरकाण्ड पद सं.–87)

गोस्वामी जीउन सबको यह शाप देते हैं कि वे युगों–युगों तक नरक में पड़े रहेगें जो तर्क–वितर्क करके वेद की निंदा करते हैं, सकल निगमागम ज्ञान के प्रतिकूल आचरण करते हैं और हेतुवाद के समर्थक है। ब्राह्मणबादी वैदिक–पौराणिक संस्कृति, विचारधारा और सामाजिक व्यवहार या के चतुर्दिक क्षरण के युग में वे सममाकित द्वारा समाज की पुरानी परिपाटियों को नवजीवन देना चाहते हैं। गोस्वामी जी इतिहास की गति पहचान नहीं पाते। वे समझ नहीं पाते कि वर्गीय अंतर्विरोध तीव्र हो रहे हैं और पुरानी व्यवस्था अपनी ही असंगतियों के परिणाम स्वरूप लड़खड़ा रही है। यद्यपि भक्तिकालीन आंदोलन के उत्थान कला के सामाजिक प्रश्नों में सिर्फ एक प्रश्न पर वे सहमति व्यक्त करते हैं कि भगवान के दरबार में भक्ति का अधिकार सबके लिए एक समान है और इस पहलू पर कोई गैर बराबरी नहीं हो सकती–पर यह बराबरी तो परलोक के लिए थी। इस लोक में यदि रामराज्य आएगा भी तो वर्णाश्रम के तरह शास्त्रों द्वारा निर्धारित विधान के तहत सब अपने–अपने कर्म ही करेंगे। पर जहाँ तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र में वैधानिक और शास्त्रीय अंतर का प्रश्न है, उनमें कोई छूट नहीं होगी। भगवान के दरबार में भी ब्राह्मणों की ही श्रेष्ठता रहेगी, यद्यपि प्रभु की दृष्टि में दास सर्वप्रिय है।

**म ममाया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।।**
**सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुजमोहि भाए।।**
**तिन्ह महँ द्विज, द्विजमहँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।।**
**तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु अति प्रिय बिग्यानी।।**
**तिन्ह ते पुनि मेहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरी न दूसरी आसा।।**
**पुनि पुनि सत्य कहउं तोहि पाहीं। मोहि सेवक समप्रिय कोउ नाहीं।।**

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड पद सं.–86)

तुलसी के राम की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर है अपनी भक्ति के बल पर जात–कुजात, छोटा–बड़ा, अमीर–गरीब सभी बराबर हैं। भक्ति की भावभूमि से मानवीय समानता और एकता का आह्वान करने में तुलसी भक्तिकाल के किसी भी कृतिकार से पीछे नहीं हैं। पर वार्णाश्रम व्यवस्था की की टूटन, जाति प्रथा के विनाश तथा श्रुति और स्मृति के अनादर से गोस्वामी तुलसीदास बहुत दुखी और संतप्त है। कलियुग की करालता के वर्णन में ऐसे प्रसंग बार–बार आते हैं। ब्राह्मणों के अनादर से भी वे बहुत परेशान और चिंतित है। वे जाति प्रथा के विनासकारी परिणामों पर भी गौर नहीं करते। नाथों, सिद्धों और संतों की वे बार–बार खिल्ली उड़ाते है और ज्ञान मार्ग का खण्डन करते हैं। भक्ति आंदोलन के मूल में अंतर्निहित विभिन्न दार्शनिक धाराओं के टकराव में वे तटस्थ नहीं बल्कि खुल्लम–खुल्ला तौर पर गोरखनाथ, कबीर आदि पर फब्तियाँ करते हैं। विशिष्टाद्वैतवाद की प्रतिपत्तियों का अवलाम्बन कर वेद–वेदांत, स्मृतियों और पुराणों की पुनर्रचित एक नयी विचार–व्यवस्था कायम करते हैं। इस विचार व्यवस्था में ज्ञान मार्ग का,उ संतो ंके रहस्यवाद का जाति प्रथा को समूल नष्ट करने के आह्वान का राम से भ्न्नि कृष्ण के स्वतंत्र व्यक्तित्व का पूरी तरह निषेध है। इस विचार–व्यवस्था में सिर्फ दास्य भाव की भक्ति है। इस भक्ति में नैतिकता मिली हुई है–इसीलिए सामाजिक उत्पीड़न के प्रति जागरूकता भी है। भक्त याचक है और भगवान राम दाता है। भक्ति का यह स्वरूप सामंती राजतंत्र के अंतर्गत निर्मित राजा–प्रजा संबंध का ही धार्मिक प्रतिबिम्ब है। निःस्वार्थ भाव से भक्ति, सत्संग और स्वधर्म के पालन में तल्लीन–इस संत को इस बात की बहुत खेद है। कि अब सब कुछ स्वधर्म तक धन के अधीन हो गया है। धन की लुट–खसोट पर अवलम्बित समाज में तुलसी अपनी हैसियत, अपनी वास्तविक स्थिति की दो टूक और निर्मम समीक्षा करते हैं–मेरा मन तो ऊँचा है और मेरी रूचि भी ऊँची है, पर मेरा भाग्य कपट नीचा है। मैं लाकनीति के लायक कभी न रहा, बल्कि उलटे हमेशा स्वच्छंद और वाचाल बना रहा। इतने साधन थे ही नहीं कि अपने स्वार्थ की पुर्ति करता, भला परमार्थ कैसे कर पाता। इस पेट की भूख के कारण मेरी जिंदगी जी का जंजाल हो गई है, चूंकि न तो कोई चाकरी मिली, न खेती की, न कभी व्यापार किया और न कभी धंधे के रूप में भिक्षावृत्ति अपनायी। आजीविका के लिए न तो कोई धंधा मिला और न कभी सीख पाया। हकिकत में हालत तो यहाँ तक पहुँच गई है कि अगर राम सहारा न दे ंतो अपने पितरों को भेंट चढ़ाने के लिए मेरे सिर पर बाल भी नहीं हैः

**ऊँचो मन, ऊँची रूचि, भागु नीचो निपट ही,**
**लोकरीति लायक न, लंगर लबारू है।**
**स्वारथु, अगमु, परमाथ की काहा चनी,**

**पटकीं कलिन जगु जीव को जवारू है।।**
**चाकरी न आकरी, न खेती, न बनिज–भीख,**
**जानत न कूर कुछ किसब कबारू है।**
**तुलसी की बाजी राखीं रामही कें नाम, न तु**
**भेंट पितरन को न मुडडू में बारू है।।**

(कवितावली, उत्तरकांड, पद सं.–67)

अनेक इतिहासकारों ने तत्कालीन सामाजिक अवस्था का विशलेषण करते हुए बताया है कि उत्तर मध्यकाल में बार–बार अकाल पड़ता और लाखों लोग भुखमरी की भेंट चढ़ जाते थे। तुलसी के कलिकाल वर्णन से संबंधित सभी पदों में उस युग के यथार्थ का ही साक्षात्कार है– यद्यपि किंचित् पौराणिक और धार्मिक पुट भी साथ–साथ द्रष्टव्य हैं। अकाल और सूखा पड़ने के समय निर्धन जन–साधारण की तबाही–बर्बादी का विश्वसनीय चित्र देने में तुलसी का अद्वैतवाद बाधक नहीं बनता है। प्रकारान्तर से लोगों के दैन्य और अभाव के प्रति एक संवेदनशील रचनाकार के रूप उनकी सजगता सम्पूर्ण कृतित्व में छायी हुई है। इसका एक प्रमाण तो यही है कि अपने उपास्य को सामर्थ्यवान, सर्वशक्तिमान, पराक्रमी और अलौकिक गूणों से सम्पन्न बताने मात्र से वे संतुष्ट नहीं होते। उन्हें ऐसा प्रतीत है कि इतना मात्र से राम के प्रति अनुराग उत्पन्न होने वाला नहीं है। अतः बार–बार कृपानिधान, करूणा के आगार, दीनदयालु, गरीब नवाज और विपन्न–वंचित जनों के शरणदाता के रूप में राम की महिमा का बखान किया गया है। ''रामचरितमानस'' में राम वनगमन की कथा के साथ–साथ ग्रामीण–जनों की झोपड़ियों और अभावग्रस्त स्थितियों का विवरण उस जमाने के जन–साधारण का वास्तविक दिग्दर्शन कराने में समर्थ है। वनवासी जातियों की जीवन–स्थिति के वर्णन प्रसंग भी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं । गरीब जन–साधारण राजपरिवार की अतर्कलह के दुःखदायी परिणामों पर जैसी टिप्पणियाँ करते हैं और आवभगत में अपनी सहज निश्छलता का जैसा परिचय देते हैं– उससे भी पता चलता है कि अपने समकालीन दलित–वंचित जन समुदाय को गोस्वामी जी किस दृष्टि से देखते थे। अपनी वास्तविकता अर्थात् अपने दैन्य को पूर्वजन्म का फल मागने वाली प्रजा सामंती मूल्यों की अनुगामिनी बनी हुई है। विचारधारा के स्तर पर तुलसी इसे गौरवान्वित करते हैं। अयोध्या कांड में वर्णित के केवट प्रसंग इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण और सार्थक है।

तुलसी अपने और अपने समाज के अभाव, निपट दरिद्रता और बेरोजगारी की दारूण अवस्था का जो चित्र पेश करते हैं, वह जन साधारण की अकिंचनता और बदहाली के अंकन के क्रम में खींचे गए चित्रों के अलबम का एक हिस्सा है। ऐसा चित्रांकन आज भी जन–सामान्य की वैसी ही अवस्था देखकर–करूणा उत्पन्न करता है– एसी करूणा जो सामंती शासक वर्ग के प्रति गुस्से और नफरत से भरी है। दरिद्रता के चित्रण की इसी कड़ी में अन्नपूर्ण के महात्म्य के बहाने भूख से बिलखते रंक और अकिंचन लोगों का वर्णन आता है–

**खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि**
**बनिकको बनिज, न चाकर को चाकरी।**
**जीविका बिहीन लोग सधिमान सोच बस,**
**कहैं एक एकन सों ''कहाँ जाई, का करी?''**
**बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकि अत,**
**साँकरे सबै पै, रामा रावरें कृपा करी।**
**दारिद–दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!**
**दुरित–दहन देखि तुलसी हहा करी।**

(कवितावली पद सं.–97)

किसानों की खेती नहीं होती, भिखारी को भीख नहीं मिलती, बनियों का व्यापार चौपट हो गया है और चाकरी चाहने वालों को रोजगार नहीं मिलता जीविका के हीन जनसाधारण शोकाकुल और संतप्त अपनी तड़फड़ाहट में एक दूसरे से पूछते हैं–कहाँ जायें, क्या करें, वेद, पुराण और लोक सभी कहते हैं कि ऐसे संकट में सिर्फ आपकी कृपा से ही समस्या का कोई समाधान हो सकता है। हे दीनबंधु राम–दरिद्रता रूपी रावण ने दुनिया को दबोच रखा है–इस पापरूपी रावण को देख कर तुलसीदास कातर होकर हाहाकार करते हैं–प्रार्थना करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास अपने वर्णन में मूर्तिमत्ता के लिए प्रसिद्ध है। मूर्तिमत्ता की इसी कला के उदाहरण के रूप में दैन्य और गरीबी के चित्र तो मिलते ही हैं–दरिद्रता रूपी रावण का रूपक भी बार–बार मिलता है। जिस तरह रावण का संहार आवश्यक है, उसी तरह दरिद्रता उत्पन्न करने वाले दुष्ट सामंती शासन का भी विनास आवश्यक है। किसानों, बनियों और कारीगरों की कैसी फटेहाली और दुर्दशा थी, इसे खास तौर पर उनके सभी रचनाओं में देखने को मिलता है।

## निष्कर्ष :–

तुलसी की सामाजिक संरचना में सामंती राजतंत्र की विचार दृष्टि का प्रतिफलन सर्वत्र दिखाई देता है। गरीबनेवाज, दीनदयालु कृपानिधान, दलितों–वंचितों के शरणदाता के रूप में सर्वशक्तिमान प्रभु राम की कल्पना से यह स्पष्ट होता है कि गोस्वामी जी व्यवस्था तो सामंती राजतंत्र को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं पर उस व्यवस्था में राजा को पद वे अपने आदर्शों के अनुकूल उदार राजा को अधिष्ठित करना चाहते हैं। ऐसा राजा जो सत्युशील और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति हो, अन्यायी का दलन करने वाला वीर और पराक्रमी हो, निर्धन–निस्सहाय लोगों के लिए करूणा–निधान हो और कठिन जीवन संगाम में अविचलित रहनेवाला साधक हो। राम राज्य की परिकल्पना में तुलसी अविकृति शुद्ध रूप में फिर से जीवित हो जाये–उनकी इसी आशावादी कल्पना की झलक मिलती है। राम राज्य के सामाजिक राजनीतिक आदर्श रूप की झाँकी उनके प्रत्येक रचना में मिलती है। राम के प्रति दास्य भाव–सेवक–भाव वाली भक्ति राजा–प्रजा संबंधों के बारे में उनकी सामाजिक–राजनीतिक मान्यताओं का ही भावात्मक प्रतिरूप है।

तुलसी ने अपने समय की स्थिति को भली भाँति परखते हुए सामाजिक आदर्श की संकल्पना समन्वय के रूप में की उन्होंने कबीर की तरह क्रान्तिकारी समाज सुधारक की भूमिका नहीं ग्रहन की, बल्कि अपनी भक्ति संवेदना को सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों में संपृक्त करते हुए लोकनायक की भूमिका का निर्वाह किया।

## संदर्भ सूची


1. रामचरितमानस उत्तर काण्ड–पद सं.–99–100
2. कवितावली उत्तरकाण्ड–पद सं.–85
3. वही, पद सं.–87
4. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड–पद सं.–86
5. कवितावली उत्तरकाण्ड – पद सं.–67
6. वही पद सं.–97
7. त्रीवेणा– आचार्य रामचन्द्रशुक्ल
8. तुलसीदा– माताप्रसाद गुप्त